International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

उपनिशदों में ब्रह्म विवेचन : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० हरिओम

शोध–निर्देशक, सहायक प्रोफेसर, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

रामसिंह

शोध छात्र, संस्कृत विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

शोध सारांशः

उपनिषद् भारतीय दर्शन के वे आधार स्तंभ हैं जिनका मुख्य उद्देश्य बाहरी कर्मकांड के स्थान पर आत्म–साक्षात्कार और परम सत्य की खोज करना है। इन ग्रंथों में ब्रह्म को किसी व्यक्ति या देवता के अतिरिक्त उस मूल तत्त्व के रूप में परिभाषित किया गया है जो संपूर्ण अस्तित्व का आधार और सर्वव्यापी सत्ता है। शोध स्पष्ट करता है कि सृष्टि के देवता 'ब्रह्मा' और उपनिशदों के 'ब्रह्म' में मौलिक अंतर है, जहाँ ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनंतता का प्रतीक है। निर्गुण और निराकार ब्रह्म को समझने के लिए 'नेति–नेति' (यह नहीं, वह नहीं) की पद्धति अपनाई गई है, जो यह दर्शाती है कि परम सत्य को शब्दों या सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। उपनिशदों का केंद्रीय दर्शन आत्मा और ब्रह्म की पूर्ण एकता है, जिसे 'तत्त्वमसि' और 'अहं ब्रह्मास्मि' जैसे महावाक्यों के माध्यम से सिद्ध किया गया है। आदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत के अनुसार, जीव और ब्रह्म के बीच दिखने वाला भेद मात्र 'अविद्या' का परिणाम ज्ञान का वास्तविक अर्थ केवल जानकारी जुटाना नहीं, अपितु अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप को पहचानकर अज्ञान के बंधनों को समाप्त करना है। मोक्ष को यहाँ किसी परलोक की प्राप्ति के अतिरिक्त, इसी जीवन में भय और मोह से मुक्ति तथा आंतरिक स्वतंत्रता के अनुभव के रूप में देखा गया है। अंततः, यह ब्रह्म–विवेचन मनुष्य को उसकी संकीर्ण पहचान से ऊपर उठाकर व्यापकता और आध्यात्मिक गहराई प्रदान करता है।

Keywords: नेति–नेति, निर्गुण ब्रह्म, अद्वैत वेदान्त, मोक्ष, अविद्या, आत्मबोध।

उपनिषद् भारतीय दर्शन की उन सबसे अहम ग्रन्थों में शामिल हैं, जिनका ध्यान बाहरी पूजा–पाठ पर कम है और दिल से सोचने, खुद को जानने और परम सत्य तक पहुँचने पर ज्यादा है। ये ग्रंथ वेदों के बाद की सोच को दिखाते हैं, इसलिए इन्हें वेदान्त भी कहते हैं। बात सिर्फ यह नहीं है कि दुनिया कैसे बनी, यहाँ सवाल उठता है आखिर इंसान कौन है? चेतना की असलियत क्या है? वह कौन–सा तत्त्व है जो सबकुछ टिकाए हुए है? यही वजह है कि उपनिषद् सिर्फ धार्मिक ग्रन्थ नहीं, जबकि वे असली अर्थ में दार्शनिक ग्रंथ हैं (राधाकृष्णन, 1953; हीरियन्ना, 1932)।

इनका दर्शन जिज्ञासा से शुरु होता है। यहाँ ऋषि हों या शिष्य, राजा हों या गृहस्थ, सब बातचीत के माध्यम से सच की तलाश में जुटे दिखते हैं। यहाँ ज्ञान, बस किसी प्यार के सिद्धांत को दोहराना भर नहीं है, अपितु यह खुद अनुभूति, सोच–विचार और विवेक का भ्रमण

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

है। यही कारण है कि उपनिशदों में संवाद, बहस, सवाल–जवाब, उदाहरण और प्रतीक सबकुछ मिलता है। यह उस परंपरा की खूबी है जहाँ बौद्धिक आज़ादी और आध्यात्मिक गहराई दोनों साथ–साथ चलती हैं (चट्टोपाध्याय और दत्त, 1968; दासगुप्त, 1922)।

दार्शनिक तौर पर देखें तो उपनिशदों की सबसे बड़ी देन आत्मा और ब्रह्म की खोज है। वे इंसान को केवल शरीर या इंद्रियों का पुतला मानकर चुप नहीं होते, अपितु उस गहरे तत्व की टोह लेते हैं जो बदलती दुनिया के बीच भी अटल रहता है। इसी तलाश में आत्मा, ब्रह्म, सत्य, ज्ञान और अनंतता जैसे विचार जन्म लेते हैं, उपनिषद् कहते हैं, बाहरी दुनिया को समझना ज़रूरी है, लेकिन खुद को पहचानना उससे भी ज्यादा अहम है, क्योंकि यहीं से वास्तविक अर्थ और गहराई मिलती है (ओलिवेल, 1998; राधाकृष्णन, 1923)।

उपनिशदों में यह दर्शन सिर्फ सोच का विषय नहीं, अपितु जीने की दिशा है। यहाँ ज्ञान का अर्थ केवल जानकारी जमा करना नहीं है, अपितु अज्ञान से बाहर आना और आत्मा का निखार है। इसी वजह से उपनिषद् नैतिक अनुशासन, इंद्रियों का संयम, गुरु–शिष्य का रिश्ता, ध्यान और सच्चाई में टिके रहना इन सबको ज्ञान की तैयारी मानते हैं। इससे साफ है कि भारतीय दर्शन में ज्ञान और व्यवहार अलग नहीं हैं। उपनिशदों की पहचान सिर्फ दार्शनिक विचारों से नहीं, अपितु एक सोच की ऐसी राह से है जो आदमी को खुद, संसार और परम सत्य के रिश्ते को समझने की तरफ ले जाती है (शर्मा, 1960; हीरियन्ना, 1932)। इसलिए, उपनिषदों को भारतीय दर्शन की नींव कहना बिलकुल ठीक है। यहाँ सवाल हैं, गहराई है, उत्तर में विनम्रता है, और सत्य की खोज है जिसमें तर्क, अनुभूति और आध्यात्मिक समझ आकर जुड़ जाते हैं। ब्रह्म, आत्मा, महावाक्य, नेति–नेति और मोक्ष जैसे विषय बाद में इसी सोच से पनपते हैं। इसलिए उपनिशदों का दार्शनिक परिचय किसी भी ब्रह्म की विवेचना की सबसे सही और ज़रूरी शुरुआत है (राधाकृष्णन, 1953; दासगुप्त, 1922)।

ब्रह्म का स्वरूप–परम सत्य और सर्वव्यापी सत्ता

भारतीय दर्शन में ब्रह्म की अवधारणा जितनी गहराई और विस्तार में है, उतनी संभवतः ही किसी और विचार में मिलती हो। उपनिषदों में ब्रह्म का मतलब किसी व्यक्ति या देवता से नहीं, अपितु उस मूल तत्त्व से है जो पूरे अस्तित्व का आधार है – जो हर चीज़ को चलाता है और उसमें छिपा हुआ है। यहाँ एक ज़रूरी बात हैः ब्रह्म और ब्रह्मा बिलकुल अलग हैं। ब्रह्मा पुराणों का सृष्टिकर्ता देवता है, लेकिन ब्रह्म उपनिषदों का वह आध्यात्मिक सत्य है जो सबके पीछे छुपा रहता है। (राधाकृष्णन, 1953; चटर्जी और दत्त, 1968)

उपनिषद् कहते हैं कि ब्रह्म ही परम सत्य है, क्योंकि उसी में जगत की स्थिरता है। जो कुछ भी हम बाहर देखते हैं, वह बदलता है, नश्वर है और नाम–रूप का बंधन है, लेकिन हर परिवर्तनशील वस्तु के पीछे एक ऐसी सत्ता है जो हमेशा रहती है – अविनाशी, अखंड और शाश्वत। इसलिए ब्रह्म को मात्र जगत का कारण नहीं, उस तत्त्व के रूप में देखा जाता है जिससे सब कुछ जन्म लेता है, जिसमें सब कुछ टिकता है और जिसमें सबका लय होता है (ह्यूम, 1921; हिरियन्ना, 1932)

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

ब्रह्म का दूसरा पहलू इसकी सर्वव्यापकता है। उपनिषद् कहते हैं, ब्रह्म किसी एक जगह, रूप या वस्तु तक सीमित नहीं है। वो पूरे जगत में फैला है, लेकिन किसी सीमा में नहीं बँधता। वह बाहर भी है और भीतर भी; हर जीव और हर अनुभव में मौजूद है, लेकिन किसी एक चीज़ में पूरी तरह समाहित नहीं होता। इसीलिए ब्रह्म को सर्वव्यापी सत्ता कहते हैं, क्योंकि वही सबको धारण करता है (ऑलिवेल, 1998; दासगुप्त, 1922).

ये भी ध्यान देने योग्य बात है कि ब्रह्म को सिर्फ भौतिक कारण या शून्य की तरह नहीं देख सकते। वो चेतन है, आध्यात्मिक है, और अस्तित्व की पूर्णता का अहसास देता है। कई विद्वानों के मुताबिक ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनंतता का प्रतीक है– हालाँकि, उसमें सत्ता, चेतना और अपरिमेयता, सब एक साथ हैं। इसलिए ब्रह्म मात्र कोई दर्शनीय कल्पना नहीं, वो असल में वह तत्त्व है जो जीवन को अर्थ, एकता और आधार देता है (राधाकृष्णन, 1953; शर्मा, 1960).

यही ब्रह्म की सोच आगे चलकर आत्मा–ब्रह्म का संबंध, महावाक्य, अद्वैत वेदांत और मोक्ष की अवधारणा की नींव बनती है। इसका महत्व किसी एक परिभाषा तक सीमित नहीं रहता दृ अपितु पूरा उपनिषद्–साहित्य इसी धारणा से दिशा पाता है। जब ब्रह्म को परम सत्य और सर्वव्यापी सत्ता के रूप में मानते हैं, तभी मनुष्य, जगत और परम तत्त्व के संबंध की खोज में गहराई आती है। इसी वजह से उपनिशदों में ब्रह्म–विवेचन केवल दार्शनिक चर्चा नहीं अपितु अस्तित्व के वास्तविक प्रश्नों को जानने की जिज्ञासा है। (चटर्जी और दत्त, 1968; शर्मा, 1960).

निर्गुण, निराकार ब्रह्म और 'नेति–नेति'

निर्गुण और निराकार ब्रह्म की अवधारणा उपनिशदों की दार्शनिक गहराई को सामने लाती है। यहाँ परम सत्य को हम किसी नाम, रूप, या इन्द्रिय से पकड़ नहीं सकते। उपनिषदों के लेखक मानते हैं कि जो सत्ता पूरे जगत की आधारशिला है, वह किसी चीज़ की तरह 'सामने' नहीं आती – वह सब जगह है, लेकिन कभी भी किसी विशेष रूप में सीमित नहीं होती। इसीलिए उपनिषदों में ब्रह्म का वर्णन अक्सर संकेतों, निषेध और आत्मानुभूति की बात करता है (राधाकृष्णन 1953 और ओलिवेल 1998)

'नेति–नेति': यह सूत्र बृहदारण्यकोपनिषद् का मुख्य शस्त्र है। बात स्पष्ट है– जो कुछ भी मन, वाणी या इन्द्रियाँ जानती हैं, ब्रह्म उससे सर्वदा आगे है। उपनिषद् यह नहीं कहते कि ब्रह्म शून्य है; वे यही समझाते हैं कि उसे किसी एक गुण, नाम या चीज़ में जड़ कर नहीं देखा जा सकता। 'नेति–नेति' सीमा को तोड़ता है, अस्तित्व को नहीं मिटाता। बृहदारण्यकोपनिषद् के 2.3.6 में यही तरीका अपनाया गया – वहाँ ब्रह्म को किसी भी परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता (राधाकृष्णन, 1953)।

केनोपनिषद् यहाँ से और भी महीन हो जाता है। वह कहता है – वाणी जिससे बोली जाती है लेकिन जिसे वाणी खुद नहीं पकड़ सकती, वही ब्रह्म है। मन, जो विचार करता है, अपितु जिसे मन विचार नहीं कर सकता – वही ब्रह्म है (केनोपनिषद्, 1.4–1.5)। यहाँ ब्रह्म ज्ञान

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

का विषय नहीं है; वह तो ज्ञान की जड़ है, वह जिसके कारण ज्ञान संभव है (ओलिवेल, 1998; हीरियन्ना, 1932)। इस दृष्टिकोण से निर्गुण ब्रह्म कोई चीज़ नहीं, अपितु चेतना की अंतिम धरा है।

तैत्तिरीयोपनिषद् की एक पंक्ति– "यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह" – स्पष्ट है, वाणी और मन दोनों उस परम सत् को नहीं छू सकते। इससे पता चलता है: कि ब्रह्म केवल बौद्धिक तर्क से नहीं होता, वह किसी गहरे आत्मानुभव में खुलता है (तैत्तिरीयोपनिषद्, 2.9.1; शर्मा, 1960)। यहाँ से यह भी स्पष्ट है कि– वेदांत में निर्गुण ब्रह्म का विचार केवल दार्शनिक विषय नहीं, साधना और आत्मबोध का रास्ता भी है।

निर्गुण और निराकार ब्रह्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह ब्रह्मा और ब्रह्म के बीच की रेखा खींच देती है। ब्रह्मा तो सृष्टि के देवता हैं, एक चरित्र हैं; परन्तु ब्रह्म वह परम तत्त्व है जिसे उपनिशदों ने बताया– न वह जन्म लेता है, न बदलता है, न किसी रूप में अवरुद्ध होता है। यह अतंर ज़रूरी है, क्योंकि उपनिषदों का ब्रह्म – अपने दर्शन और आत्मबोध, दोनों ही स्तरों पर – अंतिम सत्य है (एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, 2026)।

आदि शंकराचार्य की अद्वैत परंपरा के अनुसार निर्गुण ब्रह्म ही सर्वोच्च सत्य है, और सभी नाम–रूप उसी से उभरते हैं, उसी में लौट जाते हैं। 'नेति–नेति' साधक को हर सीमित पहचान से स्वतंत्र करता है– जहाँ दोहराव, बँटवारा और नाम–रूप की दीवारें गिर जाती हैं (दलाल, 2021; शर्मा)। निष्कर्ष यही है कि निर्गुण, निराकार ब्रह्म की धारणा उपनिशदों की दार्शनिक ऊँचाई दिखाती है। यह हमें सिखाती है– परम सत्य को बाँधा नहीं जा सकता, लेकिन उसका साक्षात्कार हो सकता है; उसे नाम–रूप में नहीं समेटा जा सकता, पर उसी के कारण सब नाम–रूप संभव होते हैं।

आत्मा और ब्रह्म का संबंध

आत्मा और ब्रह्म के रिश्ते पर बात करें तो उपनिषदों की पूरी दार्शनिक सोच इसी प्रश्न के आस–पास घूमती है। ये रिश्ता केवल किसी दर्शन का मुद्दा नहीं है, अपितु इंसान के आत्मबोध, दुनिया की समझ और मुक्ति की खोज की सबसे गहरी बुनियाद भी है। उपनिषद् के विचारकों ने आत्मा को किसी सीमित, व्यक्तिगत सत्ता के रूप में नहीं तलाशा। उन्होंने लगातार यही पूछा कि क्या यह आत्मा वही परम तत्त्व है जो समूचे ब्रह्मांड की जड़ है। यही खोज उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म की जबरदस्त एकता की धारणा लेकर आई (राधाकृष्णन, 1953; ओलिवेल, 1998)।

छांदोग्योपनिषद् का "तत्त्वमसि" महावाक्य इसे सबसे साफ और शक्तिशाली तरीके से सामने रखता है। बार–बार अपने बेटे श्वेतकेतु को समझाते हैं कि जिस परम सत्य से पूरा जगत पैदा हुआ, वही अपने भीतर भी है। इसलिए आत्मा और ब्रह्म का रिश्ता बाहर से पास होने का नहीं, भीतर से एक होने का है (छांदोग्योपनिषद्, 6.8.7)। बृहदारण्यक उपनिषद् का "अहं ब्रह्मास्मि" भी यही कहता है कि आत्मा का असली स्वरूप ब्रह्म से अलग नहीं है। यहाँ "मैं"

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

किसी से नित्य के अहंकार के लिए नहीं, उस शुद्ध आत्मचेतना के लिए है, जो हर पहचान और भेदभाव से परे है (बृहदारण्यकोपनिषद्, 1.4.10; ह्यूम, 1921)।

माण्डूक्योपनिषद् में "अयमात्मा ब्रह्म" इस संबंध को और निचोड़कर प्रस्तुत करता है। इसके अनुकूल आत्मा को जानना मतलब ब्रह्म की ओर बढ़ना, क्योंकि दोनों का परम सत्य एक है। उपनिशदों के मुताबिक, अज्ञान इंसान को अपने शरीर, इंद्रियों, मन और अहंकार तक सीमित समझ में बाँध देता है; लेकिन जैसे ही वह अपनी सचेत, साक्षी प्रकृति को पहचानता है, वैसे ही आत्मा और ब्रह्म की एकता स्पष्ट होने लगती है (माण्डूक्योपनिषद्, 2; हीरियन्ना, 1932)। आदि शंकराचार्य ने इसी सोच के आधार पर अद्वैत वेदान्त खड़ा किया। उनके मुताबिक जीव, जगत और ब्रह्म में जो भेद दिखता है, वो बस अविद्या का खेल है। जैसे ही अविद्या समाप्त होती है, समझ आ जाती है कि आत्मा वास्तव में ब्रह्म ही है और भिन्नता नाम–रूप का सिर्फ भ्रम है (शर्मा, 1960; दलाल, 2021)। इस तरह आत्मा और ब्रह्म का रिश्ता कोई सूखा दर्शन नहीं, अपितु वो अनुभव है जो इंसान को मुक्ति की ओर ले जाता है। आखिरकार, उपनिषदों के अनुसार आत्मा और ब्रह्म की बात, आंतरिक एकता, चेतना की बुनियाद और आध्यात्मिक पहचान से जुड़ी है। ये सीधा सिखाता है कि परम सत् बाहर कहीं नहीं, अपितु खुद अपने अंदर, अपने अस्तित्व की गहराई में छिपा है। आत्मा का सही ज्ञान ही ब्रह्म तक पहुँचने का द्वार है, और यही मुक्ति की नींव है (चटर्जी और दत्ता, 1968; एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, 2026)।

ब्रह्म–ज्ञान, मोक्ष और दार्शनिक महत्व

ब्रह्म–ज्ञान की बात उपनिषदों में केवल दिमागी खोज या जिज्ञासा तक सीमित नहीं है। ये सोच इंसान के पूरे अस्तित्व को बदलने वाला सच है। उपनिषद् बार–बार इंगित करते हैं कि अंतिम सत्य को जानना बाहरी चीज़ों का गुनना नहीं, अपितु अपने अंदर सच्चे स्वरूप की पहचान है। इसीलिए यहां ज्ञान, आत्मबोध और मोक्ष, ये तीनों आपस में गहरे जुड़े हैं। उपनिशदों की फिलॉसफी यही कहती है आदमी की परेशानी बाहर की वस्तुओं की कमी नहीं, खुद के असली स्वरूप को भूल जाना है। परिणामस्वरूप असली हल आत्मा और ब्रह्म की एकता की पहचान में छुपा है (शर्मा, 1962, पृ. 15–16).

वेदान्त में मोक्ष का मतलब किसी नए लोक या भौतिक उपलब्धि नहीं, ये है अविद्या के कारण से बने बन्धन का अंत। जब इंसान स्वयं को सिर्फ शरीर, मन या अहंकार का मेल समझता है, तब वह सुख–दुःख, राग–द्वेष और जन्म–मरण के चक्र में फंस जाता है, परंतु जैसे ही यह बोध होता है कि आत्मा का स्वरूप सीमाओं में बंधा हुआ नहीं, अपितु ब्रह्म स्वरूप से अभिन्न है, उसी चेतना से मुक्ति मिलती है। असल में ब्रह्म–ज्ञान अपने उस स्व–प्रकाश, शुद्ध चैतन्य स्वरूप को पहचानना है जो नश्वर दुनिया से परे है (शर्मा, 1962, पृ. 22–24).

अद्वैत वेदान्त में शंकराचार्य ने इसे और स्पष्ट किया। उनके द्वारा जगत् का अनुभव मिथ्या नहीं, अपितु उसकी परमार्थिक सच्चाई अंतिम सच नहीं है। अविद्या के कारण इंसान विभाजन और विविधता को पूर्ण सत्य मान लेता है, स्वयं को 'कर्त्ता–भोक्ता' के सीमित रूप में देखता

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

है। जबकि वास्तविक ज्ञान से यह भ्रम मिट जाता है तब व्यक्ति अपने ब्रह्मस्वरूप को पहचान लेता है।

ब्रह्म–ज्ञान सिर्फ आध्यात्मिक नहीं, ये एक गहरी दार्शनिक उपलब्धि भी है। इससे दर्शन के तीन स्तर ज्ञानमीमांसा, तत्त्वमीमांसा और नैतिकता सभी में समग्र दृष्टि बनती है। इसके लिए ये साफ करता है कि अंतिम सत्य मात्र इन्द्रियों या तर्क की सीमाओं के बंधन में नहीं होता। तत्त्वमीमांसा यहाँ कहती है कि दुनिया की विविधता के पीछे कहीं एक मूल एकता काम कर रही है। नैतिकता के स्तर पर ये मानव को केवल खुद तक सीमित नहीं, अपितु व्यापक सह–अस्तित्व की चेतना तक उठा देता है। अतः भारतीय दर्शन में मोक्ष पलायन नहीं है, अपितु जीवन को सत्य के प्रकाश में पुनः समझने की प्रक्रिया है। (शर्मा, 1962, पृ. 35; 369). अंततः, ब्रह्म–ज्ञान, मोक्ष और दार्शनिक महत्व ये तीनों ही उपनिषद्–वेदान्त की वास्तविक उपलब्धि हैं। यहां दर्शन केवल बहस या बौद्धिक खेल नहीं, अपितु जीवन के अंतिम उद्देश्य का विवेकपूर्ण अन्वेषण है। ब्रह्म–ज्ञान इंसान को अनुभव कराता है कि उसका असली रूप सीमित व्यक्तित्व से कहीं ज्यादा है; मोक्ष उस पहचान का अस्तित्वगत परिणाम है; और दार्शनिक महत्व इस परम्परा के इस समग्र दृष्टिकोण में है कि वह सत्य, आत्मा, जगत और जीवन के लक्ष्य को एक साथ देखती है। इसलिए ब्रह्म–ज्ञान कोई खोखला सिद्धान्त नहीं, अपितु यहाँ जीवन और दर्शन के बीच सेतु बनाता है (शर्मा, 1962, पृ. 23–24; 280–281).

यह अध्याय 'ब्रह्म–विवेचन' पर आधारित है, और इसकी पूरी जाँच यही दिखाती है कि उपनिषदों में ब्रह्म–विचार सिर्फ धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं है। वास्तव में, यह भारतीय दर्शन की उस सर्वोच्च चेतना का प्रतीक है जहाँ मनुष्य, जगत, ज्ञान, अनुभव, सत्य और मुक्ति ये सब एक गहरे, अटूट संबंध में जुड़े दिखाई देते हैं। उपनिशदों की बात केवल अंतिम सत्य की घोषणा तक नहीं रुकती; वे मनुष्य को यह भी सिखाते हैं कि उस सत्य की खोज स्वयं अपने अंदर कैसे की जाए। इसी कारण से ब्रह्म–विचार बाहरी विमर्श नहीं, भीतर के जागरण का विषय बन जाता है। उपनिषदों की नजर में ब्रह्म जितना विशाल, उतना ही सूक्ष्म; जितना दार्शनिक, उतना अनुभव–संपन्न; जितना सार्वभौमिक, उतना ही आत्मगत।

उपनिषदों की असली दार्शनिक ताकत यह है कि वे सवाल पूछने की स्वतंत्रता देते हैं। वे कभी तैयार उत्तर नहीं, बस सत्य की ओर इशारा करते हैं। उनका साफ कहना है जीवन का अर्थ केवल उस दृश्य जगत तक नहीं है; उसके पीछे एक आधार है जो नित्य है, हमेशा स्थिर है, और वही ब्रह्म है। ब्रह्म को न किसी देवता का सीमित रूप माना गया है, न जगत का कोई एक हिस्सा। वह वह सत्ता है जिसकी अनुपस्थिति में सब निरर्थक हो जाता है; जो कुछ है, उसे वही अर्थ और कारण देता है; उसके बिना कुछ भी संभव नहीं। उपनिशदों में ब्रह्म–विचार अस्तित्व के मूल प्रश्नों से जुड़ता है, सत्य क्या है? स्थायित्व कौन सा तत्व है? जो चीजों के पीछे एक रूप में विद्यमान है?

यदि आप ब्रह्म के स्वरूप पर सोचते हैं, तो उपनिषद् इसे परम सत्य, सर्वव्यापी सत्ता, अनंत चेतना, और समस्त अस्तित्व के मूल आधार के रूप में देखते हैं। ब्रह्म किसी सीमित रूप,

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

गुण या स्थान में बंद नहीं है। यह वह है जो सबसे बड़ा है, फिर भी सबसे नजदीक है; जो सबमें व्याप्त है, लेकिन किसी एक चीज में सीमित नहीं रहता; जो जगत का कारण है, पर खुद किसी कारण पर निर्भर नहीं। यह धारणा बहुत गहरी है यह इंसान को बाहरी विविधता के बीच एकता का बोध कराती है। जहाँ लोग जगत को सिर्फ भिन्न–भिन्न वस्तुओं और घटनाओं का समूह समझते हैं, वहाँ जीवन खंडित लगता है; लेकिन ब्रह्म की दृष्टि से वही जगत समग्रता में बदल जाता है। ब्रह्म का दर्शन विभाजन नहीं, एकत्व की बात करता है। निर्गुण, निराकार ब्रह्म और 'नेति–नेति' की पद्धति ये इस अध्याय की विशेष बातें हैं। उपनिशदों ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि– अंतिम सत्य को आकृति, नाम या भाषा में बांधना असंभव है। अगर कोई वस्तु एक शब्द या रूप में बंध जाए, तो वह अनंत कैसे रहेगी? उपनिषदों की चर्चा ब्रह्म को बयान करने की जगह, उसके सीमित निर्धारणों का निषेध करती है। 'नेति–नेति' सिर्फ एक निषेध नहीं, अपितु यह संकेत है कि ब्रह्म किसी एक बौद्धिक पकड़ में आने वाली सत्ता नहीं है। वह अनुभव के पार भी है, और उसी अनुभव के अंदर भी। यह निषेधात्मक पद्धति अहम् को तोड़ती है जिन्हें लगता है कि सत्य को पूरी तरह शब्दों में बांधा जा सकता है, उन्हें यह विनम्रता सिखाई जाती है कि ज्ञान को शब्दों की सीमा में कैद करना मुश्किल है। दर्शन यहीं से शुरु होता है।

आत्मा और ब्रह्म का संबंध उपनिशदों के चिंतन की आत्मा का मूल तत्त्व है। यदि ब्रह्म केवल कोई दूरस्थ और अप्रत्यक्ष सत्ता होता, तो उसका मानव जीवन से संबंध अत्यंत सीमित रह जाता, लेकिन उपनिषदों का दावा यही है : अंतिम सत्य, आत्मा के रूप में, मनुष्य के अंदर विद्यमान है। इसीलिए आत्मा की खोज अंततः ब्रह्म की खोज बन जाती है। यहाँ आत्मा केवल मन, बुद्धि या व्यक्तित्व नहीं है यह वह गहरे स्तर की सत्ता है जो सभी परिवर्तनों से परे है। ब्रह्म और आत्मा की एकता का विचार यही समझाता है कि अंतिम सत्य बाहर नहीं, अपने अस्तित्व के मूल में है। यह केवल दार्शनिक सिद्धांत नहीं, अपितु आत्मबोध का आमंत्रण है जब आदमी खुद को शरीर, नाम, भूमिका और सीमाओं से आगे पहचानने लगता है, तभी ब्रह्म–विवेचन संभव होता है।

महावाक्य 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'प्रज्ञानं ब्रह्म', 'अयमात्मा ब्रह्म' इन्हें केवल सूत्र नहीं मान सकते। ये उपनिषदों का निचोड़ है। 'तत्त्वमसि' मनुष्य को उसकी असली पहचान दिलाता है; 'अहं ब्रह्मास्मि' सीमित अहं की जगह जागृत आत्मा का ऐलान है; 'प्रज्ञानं ब्रह्म' ज्ञान को सूचना नहीं, चेतना के सर्वोच्च रूप से जोड़ता है; और 'अयमात्मा ब्रह्म' कहता है कि जो भीतर महसूस होता है, वही अंतिम सत्य है। यह महावाक्य केवल विचारणा तक सीमित नहीं, अपितु वास्तविक जीवन से जुड़े हैं; शास्त्रार्थ नहीं, आत्मसाक्षात्कार है इनका उद्देश्य।

छांदोग्य और बृहदारण्यक् उपनिषदों में ब्रह्म–विचार की जो गहराई है, वह उपनिषदिक चिंतन की ऊँचाई दिखाती है। छांदोग्य में ब्रह्म विविधता में निहित एकता का आधार बनकर उभरता है। बृहदारण्यक् में ब्रह्म का स्वरूप और भी सूक्ष्म और गहरा हो जाता है। वहाँ आत्मा, ब्रह्म, ज्ञान और निषेधात्मक पद्धति का समन्वय है, जो बाद के वेदान्त की दिशा तय करता है।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

इन दोनों उपनिषदों के अध्ययन से साफ पता चलता है ब्रह्म को समझने के लिए किसी एक परिभाषा पर टिकना सही नहीं; कभी वह सर्वव्याप्त सत्ता, कभी अंतरतम आत्मा, कभी असीम चेतना, कभी उन सब सीमाओं से परे दिखाई देता है जो भाषा और विचार तय करते हैं। यह बहुस्तरीयता ही उपनिषदिक दर्शन को जीवंत बनाती है। तैत्तिरीय उपनिषद् की ब्रह्म–परिभाषा, कठोपनिषद् का आत्म–अनुशासन, मुण्डक उपनिषद् की ब्रह्मविद्या इन सबका संदेश हैः ब्रह्म–विचार केवल तात्त्विक विमर्श नहीं है, अपितु साधना–पथ भी है। तैत्तिरीय की स्पष्टीकरण में ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनंतता का केंद्र है; यहाँ ब्रह्म सत्ता भी है, मूल्य भी; अस्तित्व भी है, चेतना भी; व्यापकता भी है, पूर्णता भी। कठोपनिषद् बताता है ब्रह्मबोध के लिए मनुष्य को अपने इन्द्रिय, मन और बुद्धि के स्तरों को संयमित करना होगा; जब तक जीवन का संचालन विवेक से नहीं होगा, अंतिम सत्य की प्राप्ति कठिन है। मुण्डक उपनिषद् में परा और अपरा विद्या का भेद दिखाई देता है जो ज्ञान सिर्फ बाहरी वस्तुओं तक सीमित है, वो पर्याप्त नहीं; असली ज्ञान वही है जो ब्रह्म तक पहुँचाए। इन उपनिशदों का सामूहिक संदेश यही है ब्रह्म केवल चिंतन से नहीं, आंतरिक परिष्कार से मिलता है।

शंकराचार्य की अद्वैत वेदान्त की व्याख्या ने उपनिशदों के ब्रह्म–विचार को संगठित दार्शनिक रूप दिया है। उनका साफ कहना है ब्रह्म ही परम सत्य है, जगत की बहुलता अविद्या के कारण ही वास्तविक लगती है। आत्मा और ब्रह्म का भेद अंतिम रूप में मिथ्या है। शंकराचार्य का योगदान उपनिषदों के बिखरे सूत्रों को एक सुसंगत दार्शनिक व्यवस्था में रूपांतरित करना भर नहीं है; वे ब्रह्म–विचार के अंतिम उद्देश्य को मुक्ति बताते हैं। ज्ञान यहाँ बौद्धिक सिद्धि नहीं, बंधन से मुक्ति का साधन है। उनकी दृष्टि यह बताती है जब तक मनुष्य खुद को सीमित, पृथक्, असहाय सत्ता समझता है, तब तक दुःख बना रहेगा; जैसे ही वास्तविक सत्ता का बोध होता है, बंधन की जड़ टूट जाती है।

ब्रह्म–ज्ञान और मोक्ष का संबंध इस अध्याय का अंतिम और सबसे जीवन–सापेक्ष अध्ययन है। उपनिषदों में विश्वास है अज्ञान ही बंधन का कारण है। मनुष्य खुद को वही मान बैठता है जो वह वाकई में नहीं है शरीर, नाम, पद, सुख–दुख, सफलता–विफलता, मान–अपमान। इसी गलत पहचान से डर, आसक्ति, ईर्ष्या, दुःख और असंतोष पैदा होता है। ब्रह्म–ज्ञान इस पहचान के भ्रम को तोड़ता है। जब व्यक्ति समझ जाता है कि उसकी असली सत्ता नश्वर बाह्य रूपों से परे है, जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण बदल जाता है। मोक्ष केवल मृत्यु के बाद किसी लोक की प्राप्ति नहीं है; अपितु यहाँ और अभी, भीतर की उस स्वतंत्रता का अनुभव है जिसमें मनुष्य भय, मोह, संकीर्णता और आत्मविरोध से मुक्त हो जाता है। इस अर्थ में ब्रह्म–ज्ञान जीवन से पलायन नहीं, जीवन की उच्चतर समझ है।

इस पूरे अध्याय का दार्शनिक महत्त्व सिर्फ भारतीय बौद्धिक परंपरा तक सीमित नहीं है। आज भी, जब व्यक्ति बाहरी उपलब्धियों के बावजूद भीतर से अस्थिर और असंतुष्ट रहता है, उपनिषदों का ब्रह्म–विचार उसे वैकल्पिक दृष्टि देता है। यह दिखाता है जीवन का अर्थ केवल उपभोग, स्पर्धा और बाहरी पहचान तक नहीं है। इंसान की गहराई इससे कहीं ज्यादा

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

है जितना वह सोचता है। ब्रह्म की अवधारणा व्यक्ति को व्यापक बनाती है; वह उसे 'मैं' की सीमाओं में बंद नहीं रहने देती। जब व्यक्ति खुद को ब्रह्म की व्यापकता से जोड़कर देखता है, उसका संबंध दूसरों से भी बदल जाता है तब जगत् प्रतिस्पर्धा का क्षेत्र नहीं, सहभागिता का क्षेत्र बन सकता है। ब्रह्म–विचार का नैतिक महत्त्व भी यहीं उभरता है। आत्मा और ब्रह्म की एकता का बोध केवल आध्यात्मिक अनुभूति नहीं है; यह करुणा, समत्व और सह–अस्तित्व की भूमि भी तैयार करता है।

मानवीय नजरिए से, ब्रह्म–विवेचन व्यक्ति को भीतर से परिपक्व बनाता है। यह बताता है सत्य को बाहर तलाशना काफी नहीं; खुद को जानना भी उतना ही जरूरी है। जीवन की क्षणभंगुरता, अस्थिरता और सीमाओं के बीच एक स्थिर आधार खोजने की प्रेरणा यही देता है। यही कारण है कि उपनिषदों का ब्रह्म–विचार आज भी जीवित है; यह किसी बंसी हुआ युग की निष्क्रिय बौद्धिक विरासत नहीं, अपितु आज के मनुष्य के सवालों के लिए जवाब देने में सक्षम है। जब व्यक्ति अपने अस्तित्व, उद्देश्य, पीड़ा, अकेलेपन और अंतिम सत्य के बारे में गंभीर हो जाता है, तब ब्रह्म–विचार उसके लिए दर्शन नहीं, मार्गदर्शन बन जाता है।

अंत में, इस पूरे अध्याय की बात यही है ब्रह्म–विवेचन का सार एक समग्र बोध में है, जिसमें सत्य, आत्मा, जगत और मुक्ति लगातार जुड़े हुए हैं। ब्रह्म उपनिशदों में परम सत्य है, मगर वो सिर्फ ब्रह्मांड का कोई सिद्धांत नहीं; वह खुद मनुष्य की अंतिम पहचान भी है। आत्मा और ब्रह्म का संबंध उपनिषदों को धार्मिक ग्रंथ की सीमा से उठाकर गहरे आत्मदर्शी दर्शन की ऊँचाई पर ले जाता है। 'नेति–नेति' की विनम्रता, महावाक्यों की तेजस्विता, उपनिषदों की गहराई, शंकराचार्य की दार्शनिक स्पष्टता और मोक्ष की मुक्ति–दृष्टि इन सब से यह सिद्ध होता हैः ब्रह्म–विचार भारतीय चिंतन की आत्मा है। इसका संदेश साफ 727 मनुष्य जितना खुद को सीमित समझता है, वह उससे कहीं ज्यादा व्यापक है; और जिस सत्य की खोज वह बाहर करता है, उसका उजाला उसके भीतर ही मौजूद है। ब्रह्म–विवेचन का असली निष्कर्ष है जीवन की अंतिम अर्थ बाहरी उपलब्धि में नहीं, भीतर की पहचान में है। यही पहचान ज्ञान है, शांति है, और मुक्ति की दिशा भी।

संदर्भ–सूची

प्राथमिक स्रोत

(क.) मूल उपनिषद् और भाष्य

1. ऐतरेयोपनिषद्. प्राचीन. मूल संस्कृत पाठ।
2. बृहदारण्यकोपनिषद्. प्राचीन. मूल संस्कृत पाठ।
3. केनोपनिषद्. प्राचीन. मूल संस्कृत पाठ।
4. कठोपनिषद्. प्राचीन. मूल संस्कृत पाठ।
5. छांदोग्योपनिषद्. प्राचीन. मूल संस्कृत पाठ।
6. तैत्तिरीयोपनिषद्. प्राचीन. मूल संस्कृत पाठ।
7. माण्डूक्योपनिषद्. प्राचीन. मूल संस्कृत पाठ।

8. मुण्डकोपनिषद्. प्राचीन. मूल संस्कृत पाठ।
9. शंकराचार्य, आदि. 1972. ब्रह्मसूत्र–भाष्य. अनुवाद : स्वामी गम्भीरानन्द. कलकत्ता : अद्वैत आश्रम।
10. ह्यूम, रॉबर्ट अर्नेस्ट. 1921. द थर्टीन प्रिन्सिपल उपनिषद्स : ट्रांसलेटेड फ्रॉम द संस्कृत, विद एन आउटलाइन ऑफ द फिलॉसफी ऑफ द उपनिषद्स एंड एन एनोटेटेड बिब्लियोग्राफी. लंदन : हम्फ्री मिलफोर्ड, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. 1953. द प्रिन्सिपल उपनिषद्स. लंदन : जॉर्ज एलेन एंड अनविन.
12. ओलिवेल, पैट्रिक. 1998. द अर्ली उपनिषद्स : एनोटेटेड टेक्स्ट एंड ट्रांसलेशन. न्यूयॉर्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
13. ड्यूसेन, पॉल. 1908. द फिलॉसफी ऑफ द उपनिषद्स. एडिनबरा : टी. एंड टी. क्लार्क.
14. दासगुप्त, सुरेन्द्रनाथ. 1922. ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलॉसफी, खंड 1. कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
15. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. 1923. इंडियन फिलॉसफी, खंड 1. लंदन : जॉर्ज एलेन एंड अनविन।
16. हिरियन्ना, एम. 1932. आउटलाइन्स ऑफ इंडियन फिलॉसफी. लंदन : जॉर्ज एलेन एंड अनविन।
17. चट्टर्जी, सतीशचन्द्र, तथा धीरेंद्रमोहन दत्त. 1968. एन इंट्रोडक्शन टू इंडियन फिलॉसफी. कलकत्ता : यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता।
18. शर्मा, चन्द्रधर. 1960. ए क्रिटिकल सर्वे ऑफ इंडियन फिलॉसफी. लंदन : राइडर एंड कंपनी।